ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों में आंचलिकता

-डॉ. एम. नारायण रेड्डी

पहाडियों तथा जंगलों के निर्दोष संसार के निवासियों आदिवासी, आदिम जाति, जनजाति, अनुसूचित जनजाति, वनवासी, काननवासी, अरण्यक आदि अनेक नामों से हमारे समाज में पहचाने जाते हैं। जंगलों के बीच इनका सरलतम् और तनावहीन समाज वर्षों से पल्लवित है। विश्व के अनेक भागों में वे पाए जाते हैं। कहा जाता है कि भारत में कुल जनसंख्या में से सात प्रतिशत लोग इस समूह के हैं। तथाकथित 'सभ्य' समाज के लोग उन्हें पिछड़े वर्ग के मानते हैं क्योंकि वे प्रगतिशील संसार से अपरिचित और जंगलों के एकान्त जीवन से बाहर नहीं आना चाहते हैं। लेकिन इस सत्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि अन्य 'सभ्य' लोगों की तुलना में वे लोग अधिक स्वाभाविक और तनावहीन जिन्दगी जी रहे हैं।

मेहरुन्निसा परवेज़ के कहानी साहित्य में आदिवासी जीवन का विश्लेषण करने से पूर्व 'आदिवासी' शब्द का अर्थ समझ लेना अनिवार्य है। यह माना जाता है कि 'जनजाति' के लिए महात्मा गाँधी ने 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग किया था। 'आदिवासी' शब्द का अर्थ अंग्रेजी भाषा के 'अबोरजिनल' या 'ट्राइबल' के हिन्दी रूपान्तर के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। आदिवासी एक समूह है जिसका प्राय: एक निश्चित क्षेत्र, बोली और सांस्कृतिक एकरूपता होती है। वे एक ही मुखिया के प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं और अपने आपको एक ही पूर्वज की सन्तान मानते हैं।

"आदिवासी एक ऐसा समाज है जिसकी स्पष्ट भाषाई सीमा और प्राय: भलि-भाँति निर्धारित राजनीतिक सीमा है। इस परवर्ती सीमा के अन्तर्गत सदस्यों के नियमित व्यवहार के निश्चित तरीकों को लागू किया गया है। आदिवासी के लिए एक सांस्कृतिक सीमा भी है, जो कम या ज्यादा निर्धारित होती है, और यह सामान्य ढाँचा सदस्यों के औपचारिक या अनौपचारिक क्रियाओं को व्यक्त करती है।"[1]

इस परिभाषा को समझने के पश्चात् आदिवासियों का एक चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है। आदिवासी जीवन के सबसे बड़ा गुण यह है कि वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक सक्रिय अंग है। अनेक परेशानियों के मध्य भी वे अपने आपको नृत्य और संगीत में भुला देते हैं। उनमें अभिज्ञान, निर्लिप्तता और विनोद भावना का समावेश है। इन आदिम-जाति के लोगों की जिन्दगी के पहलुओं से बाहरी लोग नृविज्ञान(एंथ्रपोलजी), समाजशास्त्र तथा साहित्य के द्वारा

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

परिचित हुए हैं। लेखकों ने सूरज की प्रखर किरणें पहुँच पाने में असमर्थ इन जंगलों की गाथा, उनकी संस्कृति, समस्या आदि को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने साहित्य में मध्यप्रदेश में स्थित बस्तर जिले के आदिवासियों के जीवन का उल्लेख किया है। कहानी साहित्य में आदिवासी जीवन को समझने के लिए उस प्रदेश के परिवेश को संक्षिप्त रूप से जानना अनिवार्य है।

बस्तर छत्तीसगढ़ प्रदेश के सुदूर दक्षिण में स्थित है और एशिया का सबसे बड़ा जिला है। क्षेत्रफल में यह केरल राज्य से भी बड़ा है। पुराण-प्रसिद्ध दंडकारण्य क्षेत्र के मध्य यह स्थित है। यह उडीसा, आंध्र-प्रदेश तथा महाराष्ट्र से घिरा हुआ है, इसलिए इन राज्यों का प्रभाव भी यहाँ के निवासियों के जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है।

इस प्रदेश का नाम बस्तर क्यों रखा गया, इस विषय पर यहाँ प्रचलित मतों को मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपनी कहानियों में स्थानीय धारणा के रूप में बताया है कि बस्तर का नामकरण 'बसंतरी' से किया गया है जिसका अर्थ है 'बाँसों की छाया।' काकतीय राजवंश के प्रथम विजेता अपना अधिकतर समय बाँस-वृक्षों के नीचे व्यतीत करते थे जिससे इस प्रदेश का नाम बाद में बस्तर रख दिया गया। दूसरा मत यह प्रचलित है कि दंतेश्वरी देवी बारंगल में महाराजा अंतमदेव को एक वस्त्र प्रदान किया और कहा कि इसे पहनने से वह हमेशा विजयी होगा। अंतमदेव वस्त्र लेकर यहाँ आया और इस प्रदेश का नाम बस्तर रखा गया।

कुछ पुराने लोगों का मानना है कि बस्तर में पहले राक्षस राज्य करते थे। वाली और सुग्रीव का राज्य यहीं था। यहाँ के धुरवा और परजा जाति के लोग इन्हीं के वंशज हैं। यहाँ पर नल, गंगा, नाग और चालुक्य वंशों के नरेश शासन कर चुके हैं। प्रवीरचंद्र भंजदेव बस्तर रियासत के अन्तिम महाराजा एवं आदिवासियों के श्रद्धा के पात्र थे। सन् 1966 में हुए बहुचर्चित जगदलपुर-गोलिकांड में वे शहीद हो गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बस्तर-रियासत का भारत के साथ विलयन कर दिया गया।

इस प्रदेश के वनों में गोंड(मुरिया, मरिया, हिल मरिया, गडबा, परजा, भतरा, हलबा), कमार, दोरला, धुरवा आदि अनेक प्रजातियों के लोग पाए जाते हैं।

बस्तर में आर्य, द्रविड़ और मुंडा परिवारों की तमाम बोलियाँ प्रचलित हैं। मुख्यत: यहाँ पर हल्बी भाषा का प्रयोग होता है। यह कहा जाता है कि हल्बी बस्तर राज्य के प्रथम चालुक्य, अन्नदेव के अंगरक्षक हल्बों की बोली थी,

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

जिसे आदिम प्रजातियों ने अपनी संपर्क भाषा के रूप में अपना लिया है। हल्बों के घुमक्कड़पन की वजह से अनेक प्रदेशों की बोलियों का असर इनकी भाषा पर पड़ा है।

"वस्तुत: हल्बी एक ऐसी अद्‌भुत बोली है, जिसमें संस्कृत, अरबी, फारसी, हिन्दी, उडिया, मराठी, छत्तीसगढ़ी, अवधी, बघेली आदि न जाने कितनी भाषाओं और बोलियों की शब्दावलियों का समावेश हुआ है।"[2]

दस-पन्द्रह कोस की दूरी पर भाषा में थोड़ा-बहुत अन्तर तो पाया ही जाता है। हल्बी की प्रधान उप-बोली भरती है। इस बोली की अनेक शाखाएँ हैं, जैसे- तिकड़ी, गोरली, कंबुचिया, पनारी, घसिया, दोरली आदि।

बस्तर जिले का सरकारी मुख्यालय जगदलपुर में है जिसे पहले लोग जगतगुडा कहते थे। यह जंगलों से घिरा हुआ छोटा-सा शहर है जहाँ पर आज 'आधुनिक सभ्यता' का जाल बिछाने में सरकार कामयाब हो चुकी है।

"छोटी-छोटी चाहों को सजाए हुए बड़े-बड़े सपनों में डूबे लोग। अब यहाँ का आदमी बीहड़ नहीं लगता हाँ, इतना जरूर लगता है कि बनावटी सुखों का हिमायती, बनावटी सुख के पीछे पागल, अब युग पलट रहा है। चेंज, हाँ सिर्फ चेंज।"[3]

यहाँ के निवासियों की स्थिति कष्टप्रद है क्योंकि वे न तो अपनी मूल संस्कृति से अपने आपको जोड़कर रखने में समर्थ हो पा रहे हैं और न ही शहरी सभ्यता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर पा रहे हैं। इन लोगों पर इस बीच की स्थिति के द्वारा उत्पन्न मानसिक-द्वन्द्व और व्यथा, इन्हें आसानी से शोषण का पात्र बना रही है।

मेहरुन्निसा परवेज़ ने बस्तर के बीहड वनों की आंचलिकता अर्थात् संस्कृति एवं सभ्यता को पाठकों के समक्ष अपने कहानी साहित्य के द्वारा उद्घाटित किया है जिसका विश्लेषण करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

प्रकृति और आदिवासी जीवन : प्रकृति की गोद में बसनेवाले आदिवासी, जंगल से इस कदर जुड़े हैं कि इसके बगैर उसका जिन्दा रहना मुश्किल है। ये काननवासी न तो प्रकृति से अपने आपको अलग रख सकते हैं और न ही इसका शोषण करते हैं बल्कि वे इसमें घुल-मिलकर प्रकृति का एक भाग बन जाते हैं। बस्तर के जंगलों में प्रकृति का संपूर्ण वैभव दूर-दूर तक नज़र आता है और यह आँखों को ठण्डक पहुँचाने में सक्षम है। इन जंगलों ने यहाँ के वासियों की हर जरूरत को पूरा किया है। इन घन-घोर जंगलों के टेढ़े-मेढ़े वन-पथों को ढूँढ निकालकर इसके हृदय भाग तक पहुँचना बाहरी व्यक्ति के लिए दुष्कर है। शायद इसीलिए यह वन्य-प्रदेश आज भी सुरक्षित है। इन्द्रावती नदी यहाँ के लोगों के लिए प्राणदायक है।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

इंद्रावती : जगदलपुर से करीब बारह मील की दूरी पर प्रवेश करती 'इंद्रावती' नदी बस्तर के मध्य से बहती है। इसका उद्गम स्थान उडीसा की कालाहांडी में रामपुर-थुआमल के पास है। बस्तर के पहाड़ी भाग को सिंचित करती हुई यह भद्रकाली के पास गोदावरी में मिल जाती है। यहाँ की दूसरी प्रमुख नदी 'खोलाब' है। इन दोनों नदियों के बारे में यहाँ के लोगों के बीच एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है।

माना जाता है कि 'खोलाब' और 'इन्द्रावती' दोनों भाई-बहन हैं। कालाहांडी से दोनों एक-साथ निकले थे। कुछ दूरी को सैर करने के पश्चात्, दोनों थक गए और राह में ही सो गए। जब 'इंद्रावती' की नींद खुली, तब उसने अपने भाई को चैन से सोते हुए देखा। वह अपने भाई की नींद खराब करना नहीं चाहती थी। उसने सोचा कि जब वह उठेगा तो खुद ही पीछे चला आएगा। सोते भाई को छोड़कर वह आगे बढ़ गई। लेकिन जब 'खोलाब' की नींद खुली तो उसने बहन को आगे बढ़ा देखकर गुस्से में अपनी बहन का साथ हमेशा के लिए छोड़ देने का निर्णय किया और जंगल-पहाड़ को चीरता हुआ दूसरी दिशा में आगे बढ़ गया। दोनों भाई-बहन फिर कभी नहीं मिले। यह कहानी आज भी बस्तर में प्रचलित है।

वन्य-सौन्दर्य : चारों तरफ के बीहड जंगल को देखकर जहाँ एक ओर मन के किसी कोने में भय उत्पन्न होता है वहीं दूसरी ओर वन्य-कुसुमों के सुरभिकणों से सुवासित अनुपम नैसर्गिक छटा को बिखेरती बस्तर के जंगल मन को मोह लेते हैं।

"प्रकृति की गोद में लालित-पालित बस्तर की ऊँची-नीची धरती अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त अभिसारिका-सी सदाबहार यौवन-स्वामिनी है।"[4]

बस्तर के छोटे-छोटे गाँव जंगलों में ही बसे हैं। वन-पथ पर जंगली आँवला, करौंदा और तेंदू के पेड़ चारों तरफ नज़र आते हैं। जंगली तुरई की बेल पहाड़ी नाले पर छायी रहती है। ढ़ेर सारे जंगली फूल अपनी शोभा को बिखेरते हुए झूमते नज़र आते हैं। चिरौंजी बस्तर में काफी मात्रा में पाए जाते हैं। आदिवासी इसके महत्त्व को नहीं जानते इसलिए वे नमक के बदले चिरौंजी बेच आते हैं, जो शहर में ऊँचे दामों में बिकता है और इससे व्यापारियों खूब मुनाफा कमाते हैं। इन्हीं जंगलों में से आदिवासी महुआ, हर्रा आदि बीनकर सुरक्षित रा।खते हैं जो पूरे साल काम आता है। यहाँ के पहाड़ों पर लाखों रुपये की बेशकीमती जड़ी-बूटीयाँ भी सुलभ हैं जो हर बीमारी का इलाज प्राकृतिक रूप से कर देता है। लेकिन यहाँ के आदिवासी इनके बारे में बाहरी व्यक्ति को कोई जानकारी नहीं देते हैं। इस प्रकार इन जंगलो में जितना सौन्दर्य बिखरा हुआ है उतनी ही संपत्ति इस भूमि पर बांस, शाल, सागौन, महुआ, जड़ी-बूटी आदि के रूप में उपलब्ध हैं।

निवास, भोजन एवं वस्त्र-विन्यास : बस्तर के आदिम-जाति के लोग स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करने वाले हैं। वे लोग जंगलों में ही रहना पसन्द करते हैं। साफ ऊँचा टीला देखकर वे अपना घर बनाते हैं। अक्सर पहाड या पहाडी के उतार पर ही गाँव बसाया जाता है। वे जंगल में अकेले घूमते हैं। उनके घर की दीवारें मिट्टी की बनी होती हैं। उनके ऊपर

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

फूँस का छप्पर होता है। विशेष अवसरों पर फर्श को गोबर से लीपते हैं और दीवारों पर मोरपंख से अनेक आकृतियाँ गाढ़ते हैं। 'सूकी बयड़ी' कहानी में जब थोरा को देखने लड़के वाले आने वाले थे तब इसी प्रकार घर को सजाया जाता है।

यहाँ के लोग खेती-बाड़ी में ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। फिर भी वे कोसरा, सावां, उडद, सेमी, सरसों, मूंग, अरहद आदि की खेती करते हैं। फसल अच्छी हुई या बुरी, इसका उन लोगों पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है। जंगली जानवरों से खेतों को बचाने के लिए ये लोग मरी हुई गाय या भैंस के सिर के ढाँचे को खूँटे से लटका देते हैं। खेतों को बुरी नज़र से बचाने के लिए फटे सूप और टूटे हुए झाड़ू का टोटका टँगाते हैं।

खाने-पीने के मामले में बस्तर के इन अरण्यकों को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है, क्योंकि वे अपने खान-पान की पूर्ति प्रकृति द्वारा करते हैं। ये लोग नाना प्रकार के कंदमूल जंगल से खोदकर खाते हैं। पेज(दलिया) यहाँ के भोजन का प्रमुख अंग है। पेज बनाने के लिए जुआरी, माडिया, चावल, कोदों या जोंधरे का आटा बनाकर या पानी में रात-भर भिगोकर उसे पत्थर से पिसते हैं। हंडी भर पानी डालकर देर तक आग पर पकाते हैं। उबल जाने पर खटाई डालकर उतार देते हैं। इसे ही पेज कहते हैं।

'कानीबाट' कहानी में दुलेसा और उसकी माँ जंगल में जाकर बोडा खोदकर लाते हैं। बोडा के मिलने पर दोनों अत्यधिक खुश होते हैं। यह एक प्रकार का कंदमूल है जो बस्तर के निवासी बड़े शौक से खाते हैं। जुलाई के प्रथम सप्ताह से इसका मिलना प्रारंभ होता है। जहाँ पर यह पाया जाता है, वहाँ की धरती फट जाती है। फटी धरती को थोडा खोदकर, नन्हे-नन्हे आलू के आकार में बोडा को निकालते हैं। यहाँ के आदिवासियों के घर में जिस दिन इसका साग बनाया जाता है, उस दिन घर के लोग बडी उत्सुकता से खाना खाते हैं।

सेमरा और माड़पाल के अधिकतर लोग चावल की खेती करते हैं और वहाँ का मुख्य भोजन भी यही है। कुछ प्रदेशों में मक्के की रोटी, आलू का साग, गुड के गुलगुले आदि को भी भोजन के रूप में खाते हैं। अम्बाडे के पत्तों की भाजी बनाई जाती है जिसे 'खट्टा साग' कहते हैं। अम्बाडे के सूखे लाल फलों को सब्जियों में खट्टाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

जोंदरी चावल का भी इस्तेमाल बस्तर में बहुत होता है। जोंदरी(भुट्टा) को ढेंकी से कूटकर उसके भीतर से निकाले गए सफेद दाने को जोंदरी चावल कहते हैं।

शराब आदिम-संस्कृति का अभिन्न अंग है। इसके बगैर उन लोगों की कोई भी पूजा, त्यौहार या खुशी पूर्ण नहीं मानी जाती है।

"चावल या बाजरे के पेय-पदार्थ जिसका यहाँ पर उपयोग होता है उसे परंपरागत आतिथ्य-सत्कार, कन्या-मूल्य, धार्मिक अनुष्ठान के अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। यह लोगों को आपस में बांधने की प्रतिज्ञा का प्रतीक है।"[5]

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

बस्तर प्रदेश में नशे के लिए महुआ, सल्फी और ताड़ी का उपयोग करते हैं जिसका ज़िक्र मेहरुन्निसा परवेज़ ने 'कानीबाट', 'टोना', 'सूकी बयड़ी' आदि कहानियों में किया है। सारे गाँव के लोग इकट्ठा होकर पत्तों के दोने में शराब पीते हैं। ताड़ी के दिनों में ये लोग गिरोह में बंटकर एक-एक पेड को कब्जा कर लेते हैं। पेड़ पर एक हंडी बांधी जाती है। नशे की हालत में पेड के नीचे ही कई दिनों तक पड़े रहते हैं। नशा करने में कोई लिंग-भेद नहीं रखा जाता है। ये लोग इसे स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक मानते हैं।

अन्य आदिम-जाति के निवासियों की तरह बस्तर के निवासी भी कपडे कम मात्रा में पहनते हैं। स्त्री-पुरुष कमर पर हाथ-डेढ़-हाथ के कपडे की लंगोटी बांध लेते हैं। बाकी शरीर खुला रखते हैं। गले में ढ़ेर सारी मालाएँ पहनते हैं। जंगलों के भीतर इतने वस्त्र भी नहीं पहने जाते हैं। लेकिन आजकल जगदलपुर और उसके आस-पास के इलाकों के लोग शहर के निवासियों का रहन-सहन देखकर कपडों का इस्तेमाल ज्यादा करने लगे हैं।

इन आदिम-निवासियों को श्रृंगार करने का बहुत शौक है। पुरुष कलाई में लोहे या पीतल के बड़े-बड़े, मोटे-मोटे, कडे, कमर पर कर्धनी, गले में पोत की माता और कान में पीतल की बारी-लुरकी पहनते हैं। लड़कियाँ पूर्ण श्रृंगार करने के पश्चात् ही घोटुल जाती हैं। मेहरुन्निसा परवेज़ ने इसका विवरण 'कानीबाट' कहानी में विस्तृत रूप से दिया है। लड़कियाँ गले में दस-पन्द्रह लोहे की सुतियाँ(हमेला), पीतल, पोत तथा कौडियों की माला, भुजाओं पर और कोहनी के ऊपर कड़े, दसों उँगलियों में छल्ले और कमर पर कर्धनी पहनती हैं। जितनी हाट-मंडई लड़कियों ने देखी है उतनी ही माला उनकी गले में दिखाई देती हैं। घोटुल जाने से पूर्व वे नाक में फुल्ली, गले में नीर, गुरिया तथा रुपया अँगूठी, कांच की मोटी चूडियों के साथ बनुरिया तथा पैर में पैड़ी पहनती हैं। माथे पर तला कासरान, जूडे में कतडांग(कौड़ी), रांग पनिया(रांगे की कंघी) तथा मदार पोंगार(मंदार फूल) लगाती हैं। रांग पनिया की निश्चित संख्या में कमी होने पर घोटुल में दंड दिया जाता है।

बस्तर में सभी लड़कियाँ अपने शरीर पर विभिन्न आकृतियों को गुदवाती हैं। श्रृंगार करने का यह एक पुराना तरीका है। गोदना, गुदवाना इन आदिमवासियों में एक व्यक्तिगत सजावट के रूप में प्रारंभ हुआ लेकिन बाद में यह सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अनिवार्य हो गया। जब तक गोदना नहीं गुदवाया जाता है तब तक लड़की को पवित्र नहीं माना जाता है। उसको रसोई नहीं छूने देते हैं तथा उसका ब्याह नहीं हो पाता है। गोदने की स्याही घी के दीपक की कालिख और हरे बेल की पत्तियों का रस तथा बेल की गोंद को मिलाकर बनाते हैं। सूखे आक के काँटे से गोदते हैं। यह प्रक्रिया अत्यधिक दर्दनाक है और किसी-किसी के शरीर पर यह पक भी जाता है। लेकिन कुछ दिनों के पश्चात् स्थिति सामान्य हो जाती है। देह के इस चिह्न को ये लोग आभूषण से बढ़कर मानते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि मृत्यु-पश्चात्

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

यह चिह्न शरीर के साथ जाता है। यहाँ के लोगों का मानना है कि जिसके शरीर पर गुदना नहीं है वह नरक भोगेगा अर्थात् जितना ज्यादा गुदना होता है, उतना ज्यादा उसे सुख मिलता है।

"गुदना तो गहने से बढ़कर है, मरने पर संग जाता है, जिस छोरी के जितना गोदना होगा उतना उसे सासुरे मान-सम्मान मिले हैं।"[6]

बस्तर में यह विश्वास भी है कि गोदना गुदवाने से रोग, भूत, बुरी आत्मा आदि नहीं लगती हैं। माना जाता है कि लड़कियों का सौन्दर्य और भाग्य इससे निखर जाता है।

धार्मिक जीवन : बस्तर-वासियों का विश्वास है कि इस माटी के कण-कण में देवी-देवताओं का वास है। ये लोग वन, झाड़-झंखाड़, नदी-पहाड, नाला-तलैया सभी में देवताओं का दर्शन करते हैं। लेकिन मूल रूप से पुरखों के जमाने से वे लोग माँ दंतेश्वरी की पूजा करते हैं। यह विश्वास है कि बस्तर राजघराने के पुरखों के साथ देवी, बारंगल से यहाँ आई थी। उन्हीं ने इस भू-भाग का नाम बस्तर रखा है। दंतेश्वरी देवी चालुक्य राजवंश की इष्टदेवी थी। दतेवाडा, जगदलपुर, बड़े डोंगर, छोटे डोंगर और बीजापुर में इनका आसन है।

माँ दंतेश्वरी के अलावा, इनके अनेक सहायक देवी-देवता भी यहाँ पाए जाते हैं। मुत्तल अम्मा, मावली, चिरपट्टी देव, सीतला माई, माँ दयामूले, जलनी बूढ़ी, गंगादई माता, केशरपालीन, महिषासुरमर्दिनी, आमाबालिन, लोहंडीगुडीन, हुर्रेमारा आदि ऐसे अनेक देवी-देवता यहाँ घर-घर में पाए जाते हैं।

बाली पूजा : श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज़ ने बस्तर में होने वाली इस पूजा का विवरण विस्तारपूर्वक 'टोना' कहानी में दिया है। यहाँ पर भीमादेव को सब देवों में बड़ा व मालिक मानते हैं। यह विश्वास है कि विश्व की उत्पत्ति इन्हीं के द्वारा हुई है। भीमादेव और कोदनी के ब्याह पर ही बाली-पूजा होती है। ब्याह के लिए निर्धारित दिन से करीब डेढ़ माह पहले ही यह पूजा शुरू हो जाती है। बारात निकलने वाले दिन यहाँ बड़ा समारोह होता है। इसके बाद ही धान बोया जाता है।

बारात के दिन सबसे आगे भीमादेव की डोली होती है, जो सफेद और संतरे रंग के फूलों से सजी होती है। देव को जिस कुर्सी पर बिठाते हैं उसके पीछे काले मखमल का कपडा लगा होता है और ऊपर मोर के पंखों से इसको सजाया जाता है। बहुत से छोटे-छोटे देव भी बारात में शामिल होते हैं। इसके पीछे एक आदमी सिर पर भोजली रखे झूमता हुआ चलता है। उसके पीछे एक औरत सिर पर पानी का भरा घड़ा लिए नाचती हुई चलती है। बारह-तेरह साल की आठ-दस लड़कियाँ, सफेद साड़ी पहने, बालों को सामने बिखराए गाना गाती, नाचती हुई चलती हैं। माना जाता है कि इन पर देवी चढ़ी है। गाँव के हर घर से भोजली आती है। शहनाई और ताशे की गूँज से पूरा माहौल संगीतमय हो जाता है।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

बारात मंडई पहुँचते ही पूरा वातावरण उत्साहपूर्ण हो जाता है। यहाँ पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है। साल भर की आवश्यकता के लिए आदिवासी यहीं से खरीदारी करते हैं। भीमादेव की डोली से जो फूल गिरता है उसे ले-दे कर कुंआरे लड़के-लड़कियाँ ब्याह कर लेते हैं। ऐसा ब्याह अक्सर प्रेम-विवाह होता है।

जादू-टोना : बस्तर में जादू-टोना का बहुत प्रचलन है। बाहरी दुनिया जिसे अंधविश्वास कहकर नकार देती है वही आश्चर्य चकित कर देने वाले के रूप में हमें यहाँ दिखाई देता है। सावरी विद्या में ये लोग प्रवीण होते हैं। यदि किसी को मारना हुआ तो उस मनुष्य के पैर की धूल या सिर के बाल या कपड़े के टुकड़ों को देवी की मूर्ति पर चढ़ा देते हैं। तत्पश्चात् वह आदमी बीमार पड़ जाता है और चंद दिनों के बाद मर जाता है।

'टोना' कहानी में काकी टोना करने या उतारने से पूर्व शराब पीती है। टोना करने या उतारने के लिए वह शराब की खूब इस्तेमाल करती है। टोना किसने किया है, जानने के लिए सबसे पहले काकी धरती को गोबर से लीपती है। लकडी की छोटी डिबिया में रखे चावलों को धरती पर गिरा देती है और अलग-अलग नामों पर मंत्र पढ़ते हुए चावल बीनती है। जिस नाम पर सबसे ज्यादा चावल होता है, माना जाता है कि उसीने टोना किया है।

बस्तर के लोगों में विश्वास है कि टोना द्वारा कुछ भी कर पाना संभव है। 'नया घर' कहानी में हलीमन की माँ चूडियाँ बेचती थी लेकिन किसी ने चूड़ी के टोकने में टोंटी का चावल बिखेर दिया, जिससे उसका धन्धा बंद हो जाता है। माना जाता है कि अगर किसी कुआँरी कन्या को नग्न करके उसके हाथों सूप में राख रखवाकर फटकवा देने से जो राख उड़ती है उससे पानी से भरे बादल उड जाते हैं। इस मंत्र को उल्टा पढ़ने पर यह बंधा मंत्र खुल जाता है और वर्षा होना शुरू हो जाता है। यहाँ पर यह भी विश्वास है कि जचकी के समय धरती पर चावल फेंकने से माँ दंतेश्वरी गर्भवती औरत की सहायता करती है।

'टोना' कहानी में काकी का कोई भी बच्चा जीवित नहीं बचता था। इसलिए जब खोड़ी(नारी पात्र) का जन्म हुआ तब वह उसे कचरे में डाल देती है। वहाँ के विश्वास के अनुसार बडी माँ कचरे के ढ़ेर पर एक पैसा रखकर बच्चे को उठाकर काकी की गोद में डाल देती है। टोना करने वाली औरतों को यहाँ पंगनीन(टोन्ही) कहते हैं। उनके सिर पर बाल नहीं होते हैं। यहाँ का विश्वास है कि रात को वह आदमी का खून चूसने निकलती है और पौ फटते ही वापस घर लौट आती है। कहते हैं कि पंगनीन छत पर से डोरी डालकर सोए हुए आदमी की नाभी से खून खींचकर पीती है।

त्यौहार, हाट एवं मंडई : आदिवासियों के त्यौहार उनके संघर्षशील और श्रमसाध्य जीवन में पूरे वर्ष उल्लास और मधुरता घोलती है। ये उत्सव, त्यौहार, मेला, तमाशा, हाट आदि ही इन्हें जिन्दगी के प्रति उत्साह और प्रेरणा देते हैं। ये उनके जीवन में स्फूर्ति और चेतना का संचार करते हैं।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

तारा त्यौहार : यह बस्तर के गाँव-गाँव में बच्चों द्वारा मनाया जाने वाला त्यौहार है। 'देहरी की खातिर' कहानी में बच्चे इस त्यौहार को मनाते हैं और जवान होने पर बचपन के उल्लास को स्मरण करते हैं। यह नवा-खानी का त्यौहार फसल काटने पर मनाया जाता है। इसे 'पूनी का त्यौहार' भी कहते हैं। लड़कियाँ छोटे-छोटे टूकने में एक जलता दिया रखकर उसमें कपडे की चिन्दियों से हाथ की बनाई गुडिया सजाकर टोलियों में निकलती हैं और गाँव के हर घर के सामने खड़े होकर तारा-गीत गाती हैं। इसके बदले में लोग सबके टूकने में चावल और पैसा डालते हैं। लड़के रंग-बिरंगे भेष बनाकर 'छेर-छेर' नाचते हैं और चावल एवं पैसा इकट्ठा करते हैं। इन पैसे और चावल से वे पिकनिक मनाते हैं।

दियारी त्यौहार : यह त्यौहार होली के पूर्णिमा की रात को मनाया जाता है। मेहरुन्निसा परवेज़ ने 'जंगली हिरनी' कहानी में इस त्यौहार का वर्णन किया है। धान कटने के पश्चात् ही इस त्यौहार का आगमन होता है। शाम को गाँव के मंदिर के सामने मेला-सा लगता है। लोग दन्तेश्वरी देवी को धान की बालें और बकरे की बलि चढ़ाते हैं। युवक-युवतियाँ देवी के सामने बाल खोले डोलते हैं। कुछ लोग मुर्गों के पैरों में छुरियाँ बांधकर लड़ाई कराते हैं। युवक-युवतियाँ तुपकी से एक दूसरे के शरीर पर निशाना लगाते हैं। इस प्रकार अनेक खेलों के द्वारा वे इस त्यौहार को मनाते हैं।

भगौरिया हाट : आदिवासियों में साप्ताहिक बाज़ार को हाट कहते हैं। उस प्रदेश की अर्थव्यवस्था में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह सिर्फ लोगों को आवश्यक सामग्रियाँ खरीदने और बेचने का स्थान ही नहीं है बल्कि हाट उनके सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख अंग भी है। बस्तर-क्षेत्र में फागुन मास में भगौरिया हाट आती है। इस महीने में पूरी धरती फूलों से सजी होती है, पके महुए की गंध, पके गेहूँ और धनिए की गंध, बसंती हवा में घुल-मिल जाती है। त्यौहारिया हाट से सामान खरीदने के पश्चात् भगौरिया हाट जाते हैं। गाँव में इस महीने में एक उत्सव-सा छा जाता है। बाँसुरी के सुरीले बोल पूरे हाट में सुनाई देते हैं। युवक-युवतियाँ शक्कर की विशेष प्रकार की मिठाई, जिसे 'माजम' कहते हैं, खाकर खुशियाँ मनाते हैं।

"भगौरिया हाट लगी थी। बूढ़े, जवान और बच्चे सबके चेहरे पर प्रसन्नता थी.....गाँव के वातावरण को देखकर लग रहा था जैसे युद्ध में जाने के लिए सेना सज रही हो। युवकों की नाचनेवाली टोलियाँ अलग-अलग अपनी तैयारी में लगी थीं।"[7]

युवक-युवतियाँ नृत्य के बाद मुट्ठी में गुलाल लिए एक दूसरे को लगाते हैं। इस प्रकार गुलाल का आदान-प्रदान करने वाले जोड़े हाट से भाग जाते हैं। ऐसे भागे हुए जोडों में लड़की का पिता लड़के के पिता के घर तीर और चोली पहुँचाते हैं। अगर लड़के का बाप चोली रख लेता है तो ब्याह पक्का समझा जाता है और तीर रखकर चोली को लौटा दिए जाने पर आपस में युद्ध की शुरूआत मानी जाती है। इससे लड़की को वापस ले आना पड़ता है और इसके पश्चात् लड़की का दूसरा ब्याह नहीं हो पाता है।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

नारायणपुर की मंडई : आदिवासी समुदाय सुरक्षित होकर अपनी जिन्दगी में जब एक वर्ष और जोड़ लेता है, तब वह अपने उल्लास को प्रकट करने के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से दैवी शक्ति की आराधना-पूजा के साथ मंडई(मेले) में मस्ती से झूम उठते हैं। नारायणपुर की मंडई हर साल फरवरी-मार्च तक लगती है। मेले के बीचों-बीच मंडप में उस गाँव की देवी और दूसरे गाँव के देवता बाजे-गाजे के साथ, एक साथ विराजमान रहते हैं। यहाँ पर उनकी डोली मोरपंख, बैरकलाठ आदि से सजी होती है। लोग आकर देवी को चढ़ावा चढ़ाते हैं। नगाड़े और शहनाई की ध्वनि से वातावरण भक्तिपूर्ण लगता है। यहाँ अन्य गाँवों से भी देवी-देवता आकर अलग-अलग आसनों पर विराजमान होते हैं। माना जाता है कि अगर किसी पर देवी चढ़ जाती है तो वह बाल बिखेरे कनेर के फूल खोंसे हुए झूमता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए लोग पुजारी को चढ़ावे में पैसे देते हैं। बस्तर की मंडई सिर्फ खरीदारी की जगह न होकर, बिछड़े दिलों का संगम स्थल भी है। यहाँ हमें मानवीय सम्बन्धों के बनते-बिगडते दृश्य देखने को मिलते हैं।

"बरसों से तरसी आँखें तितरा-तितरा कर, भीड़ के रेले को चीरती इधर-उधर बहककर बिछड़े प्रेमी को खोज़ रही थीं.....बरसों से बिछड़े अपने परिवार से मिलती औरतें प्रसन्नता से फूली न समा रही थीं।"[8]

लड़कियाँ दूकानों में झुंड बनकर सामान देखने आती हैं। बचाकर रखे पैसों से वे दर्पण, चूडियाँ और दूसरे श्रृंगार के साधन खरीदती हैं। यौवन की खिलखिलाहट से पूरा माहौल हर्ष और उल्लास से भरा होता है। जूही, कनेर, सेम्हल, गेंदे आदि के फूलों से बालों को सजाए, ये लड़कियाँ अपनी अल्हडपन से पूरे वातावरण को मोहक बनाती हैं। गृहस्थियों की भीड़ भटा, टमाटर, चावल, नमक, सुकसी आदि की दूकानों में जमा होती हैं।

शहरी युवक अपने पापी मन को पैसों की तडक-भडक से ढँककर यहाँ की युवतियों को आकर्षित करने की कोशिश करते हैं। सूरज के ढलने के साथ ही मेले में अपवित्र इरादों का वातावरण बोझिल हो जाता है। "मेला जहाँ दिन में पवित्र ही, पवित्र था, वही रात को गुनाहों से भरपुर था।"[9]

अनेक कुआंरी लड़कियाँ इस दौरान माँ बन जाती हैं, लेकिन उसे यह नहीं पता होता कि उसके बच्चे का पिता कौन है और किस शहर से आया है। आदिवासी लड़कियाँ अपने भोलेपन की वजह से इस प्रकार ठगी जाती हैं और जिन्दगी भर पछतावे के आग में सुलगती रहती हैं। मेले की सारी पवित्रता मैली हो जाती है। पैसे के बल पर और झूठे वायदों से इन युवतियों के जवान देह का सौदा होता है। दूसरे दिन सुबह ये लड़कियाँ कुचले बासी फूल की तरह, मुरझाई, अपने गाँव लौट जाती हैं।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

मूल रूप से आदिवासी परिवार अपने खाद्यान्न एवं वनोपज बेचने और बदले में आवश्यकताओं की वस्तुएँ खरीदने इन मेलों में आते हैं। आर्थिक और व्यावसायिक उपयोगिता के साथ ही इसका सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू आदिवासियों के जीवन का अभिन्न अंग है।

लोक-कथाएँ एवं मान्यताएँ : पुरखों के द्वारा समय-समय पर बताई हुई लोक-कथाएँ आज भी बस्तर में जंगल के निवासियों के बीच व्याप्त हैं जिसे अगर तथाकथित सभ्य समाज के निवासियों ने सुना तो ये कथाएँ हँसी का विषय बन सकती हैं लेकिन यहाँ के भोले-भोले प्रकृति की संतान के लिए ये मान्यताएँ हैं।

गलगल पक्षी सम्बन्धी कथा : बस्तर के वनों में गलगल चिडियाँ बहुत मात्रा में दिखाई देती हैं। प्रचलित विश्वास के अनुसार माना जाता है कि गलगल एक अच्छे परिवार की लड़की थी। जब उसका विवाह हुआ तब उसे ससुराल में सास, ननद और पति के द्वारा उम्र भर सिर्फ दुख ही दुख झेलने को मिला था। इन्हीं दुखों ने उसके प्राण ले लिए और अगले जन्म में वह गलगल चिडिया बनकर पैदा हुई। उसकी भटकी हुई आत्मा आज भी सन्नाटे में चीखती रहती है, 'मैं प्यासी हूँ, मैं प्यासी हूँ'। ध्यान से सुनने पर गलगल चिडिया की आवाज में यही करुणामय रूदन सुनाई देता है।

मछली सम्बन्धी कथा : बस्तर में जब चावल का खेत पककर तैयार हो जाता है, तब वहाँ ढेर सारी मछलियाँ आती हैं। 'टोना' कहानी में काकी कहती है कि जब पानी बरसता है तब एक मछली गिरती है। उसी से फिर इतनी सारी मछलियाँ पैदा हो जाती हैं। भाटा डगाऊ मछली जब रास्ता भूल जाती है, तब मोगरी मछली से रास्ता पूछने खेतों में आती है।

मृत्यु से जुडा विश्वास : 'पत्थरवाली गली' कहानी में गाँववाले जचकी में मरने वाली औरत को भैंसागाडी में डालकर, जंगल में ले जाते हैं और गाड़ देते हैं। निशानी के तौर पर नई-साड़ी टाँग देते हैं, जिससे कि सबको पता लग सके और कोई भी भटका हुआ मुसाफिर वहाँ सुस्ताने न बैठे। माना जाता है कि भैंसागाडी में डालकर ले जाने से मरने वाली औरत की रूह वापस नहीं आती है। यहाँ के लोग रात को जंगल का रास्ता भैंसागाडी में बैठकर ही पार करते हैं क्योंकि लोगों में यह विश्वास है कि इससे कोई भटकी हुई रूह पीछा नहीं करती है।

आत्मा सम्बन्धी विश्वास : 'पत्थरवाली गली' कहानी में जेबा के दादा अपने परिवार वालों को बताते हैं कि शेख सद्दू बहुत बड़ा धनी सेठ था। लेकिन वह हमेशा मैले-कुचले कपडों में रहता था। उसका मुख्य काम औरतों के साथ ऐश करना था। मरने के बाद भी उसकी आत्मा भटकती रहती है। माना जाता है कि शेख सद्दू की आत्मा का वास जिस घर में होगा वहाँ पैसों की कोई कमी नहीं होती है। लेकिन घर की पहली औलाद को वह अपना शिकार बना लेता है।

जेबा के दादा के एक दोस्त मकान बनाने के लिए जब खुदाई का काम शुरू करते हैं तब बरगद के पेड़ के पास से एक घडे में उन्हें पुराने ज़माने के असली चाँदी के रुपये मिलते हैं। इस प्रकार उनके घर में शोख सद्दू का वास होता है।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

इसके पश्चात् ही उनके घर में पैंसों की बरसात होती है। लेकिन उनके बेटे का देहान्त हो जाता है। शेख सद्दू के लिए हर बृहस्पतिवार को गुड के गुलगुले बनते हैं। कढ़ाई में से गुलगुलों को चम्मच से नहीं निकाला जाता है। गरम तेल में हाथ डालकर गुलगुलों को छानना पड़ता है। दादा के दोस्त घर की ऐसी स्थिति से तंग आकर अपने एक दुश्मन को चाँदी के पाँच सिक्के भेंट में देकर शेख सद्दू को उस आदमी के साथ विदा करते हैं। ऐसा करके वे अपनी मुसीबतों से छुटकारा पाते हैं।

घोटुल-गृह : कई आदिम-जातियों में युवा-शयनशाला एक प्रधान सामाजिक संस्था है जो विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। इस युवा-शयनशाला को मोरंग, घोटुल धंगरबस्सा, गितिओरा, धुमकुरिया, रंगबंग, लूप-पोंग, ज्ञापतेक, ब्यानगो आदि कहते हैं। यह एक तरह से अनौपचारिक पाठशाला है जहाँ बच्चों को बचपन से ही विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण देते हैं। ये युवागृह प्रत्येक जाति के अनुशासन के संरक्षक हैं। कई युवा-गृह में सिर्फ लड़के ही रात बिताते हैं लेकिन कई जगह यह लड़के-लड़कियों के लिए विश्रामगृह है। यहाँ पर विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्ध वर्जित नहीं है लेकिन हर युवागृह का अपना-अपना नियम है।

बस्तर में पाए जाने वाले मुरिया-जनजाति के युवागृह को घोटुल कहते हैं। यह सिर्फ विश्रामगृह ही नहीं है वरन् मनोरंजन और प्रशिक्षण का केन्द्र भी है। यहाँ बच्चों को अनुशासन, सामाजिक चेतना, रीति-रिवाज़ की शिक्षा, शिकार आदि में प्रशिक्षित किया जाता है। यहाँ लड़के-लड़कियाँ एक साथ रहते हैं। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि लिंगो देवता घोटुल के जन्मदाता है। यहाँ पर युवाओं को सामाजिक नियम, ईमानदारी, आज्ञापालन, सहयोगपूर्ण जीवन-यापन आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। यहाँ पर यौन-शिक्षा भी दी जाती है। उनके परंपरागत नाच, गाने, लोक-कथाएँ आदि से भी युवाओं को अवगत कराया जाता है।

"घोटुल की उपस्थिति मात्र से ही मुरिया समाज में चोरी, हिंसा व यौन सम्बन्धी अपराध नगण्य पाए जाते हैं और घोटुल ने वहाँ के लोगों को एक जैविक, सामाजिक व मानसिक संतुष्टि प्रदान की हुई है।"[10]

मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपनी कहानी 'कानीबाट' में घोटुल की विशेषताओं का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। घोटुल मुख्यत: या तो गाँव के बाहर या मध्य में स्थित होता है। इसमें एक मुख्य भवन होता है। छ: से आठ वर्ष की आयु से लेकर सभी अविवाहित युवक-युवतियाँ घोटुल में सदस्य होते हैं। घोटुल के सदस्यों में लड़कों को चेलिक और लड़कियों को मोटियारी कहते हैं। अस्वास्थ्य के अलावा किन्हीं और कारणों से घोटुल न आने पर अगले दिन वह व्यक्ति दंडित होता है। इस संस्था का सदस्य बन जाने पर युवक-युवतियों को अपने वास्तविक नाम से भिन्न एक नया नाम दिया जाता है। इसी नाम से वे घोटुल में जाने-पहचाने जाते हैं। घोटुल से बाहर किसी को भी इस नाम की जानकारी नहीं होती

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

है। युवक-युवतियों में नेतृत्व स्थान को ग्रहण करने वाले व्यक्ति को पटेल और पटेलिन कहकर पुकारा जाता है। सदस्यों के बीच काम का बंटवारा करना, उनका निरीक्षण करना व दंड देना इन्हीं की जिम्मेदारी मानी जाती है। घोटुल में जब लड़कियाँ जाती हैं, तब श्रृंगार से पूर्ण होती हैं। घोटुल में रांग पनिया(कंघी) का विशेष महत्त्व है और निर्धारित संख्या से कम होने पर घोटुल में दंड मिलता है।

एक घोटुल का सदस्य जब दूसरे गाँव जाता है, तो वहाँ के घोटुल-सदस्यों द्वारा उसका धूम-धाम से स्वागत होता है। इसके लिए सबसे पहले घोटुल को निराले रूप से सजाया जाता है। इसे बढ़िया ढंग से लीपने के बाद प्रवेश द्वार एवं दीवारों को रंग-बिरंगे बेल-बूटे, हाथी, घोड़ों की तस्वीरों से सजाया जाता है। अहाते के पास ही एक जलता हुआ मशाल खौंस दिया जाता है। घड़े में सल्फी रखी जाती है और पान-रोटी बनाया जाता है। पान-रोटी ऐसे खास मौकों पर ही बनाया जाता है। सरगी के पत्तों पर आटा फैला कर आग में भून दिया जाता है, इसे ही 'पान-रोटी' कहते हैं। सभी सदस्य किसी-न-किसी काम में लगे रहते हैं। पटेल और पटेलिन इन सारे कामों का निरीक्षण करते हैं। लड़के-लड़कियों के बीच मस्ती का आलम छाया होता है।

अतिथि को बुलाने के लिए घोटुल के किसी सदस्य को भेजा जाता है। अगर पहुना(मेहमान) लड़का है तो उसे लेने लड़की जाती है और अगर मेहमान लड़की है तो उसे लेने लड़का जाता है। अगर मेहमान को लेकर आने में घोटुल का सदस्य कामयाब नहीं हो पाते, तो उसे दंड दिया जाता है साथ ही प्रतिजाति के सदस्य उसकी हँसी उडाते हैं। मेहमान को लिवाने जाने से पहले वे घोटुल-देवी को प्रणाम करते हैं, फिर घोटुल के खूंटे एवं माटी देवी को छूकर माथे से लगाते हैं।

अतिथि के आ जाने के पश्चात् सब मिलकर सल्फी पीकर, पान-रोटी खाते हैं। टोलियों में बंटकर, ढ़ोलक की थाप पर सब नाचते हैं। रात-भर नाच और मुंदेरी-खेल चलता रहता है। गीत, नृत्यु और खेल में तल्लीन होकर वे हँसते-गाते सो जाते हैं और सुबह होते ही सभी अपने-अपने घर लौट जाते हैं।

मुरिया जाति में घोटुल उनके सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग है। लेकिन धीरे-धीरे इसके ढाँचे और नियमों में भी बदलाव आना शुरू हो गया है। नियमों के उल्लंघन और बाहरी लोगों के हस्तक्षेप से अब यह संस्था क्षीणावस्था में पहुँच चुकी है। अब लड़कियाँ यहाँ रात नहीं बिताती हैं क्योंकि बाहरी लोग उनका शोषण करने लगे हैं।

विवाह पद्धति : आदिम जातियों में विवाह दो परिवारों के संयोग का प्रतीक है। यह एक सामूहिक घटना है जो पुरुष और स्त्री को दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने का सार्वजनिक स्वीकृति प्रदान करती है। बस्तर जैसे विस्तृत भू-प्रदेश के रीति-रिवाज़ों में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है। बस्तर के विभिन्न प्रदेशों के रस्म-रिवाज़ का उल्लेख इस आलेख में नहीं किया गया है वरन् उन्हीं रिवाज़ों का ज़िक्र किया है जिसे मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने आंचलिक कहानियों में दर्शाने की कोशिश की है।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

यहाँ पर बाल-विवाह की प्रथा न के बराबर है फिर भी कुछ जातियों में बचपन में महला(मंगनी) कर देने की रस्म पाई जाती है। अगर जवान होने पर बचपन में की गई मँगनी तोड़ दी जाती है तो बिरादरी द्वारा भारी दंड दिया जाता है। यहाँ पर ब्याह अक्सर अठारह-बीस वर्ष की उम्र के बाद ही होता है और यह बात भी जरूरी नहीं मानी जाती कि लड़की उम्र लड़के से कम हो।

'कानीबाट' कहानी में जलयारी की मंगनी बचपन में ही हो चुकी थी लेकिन जवान होने पर वह किसी और से प्यार करती है। लेकिन जलयारी को अपने पसन्द के युवक(चाजेन) के साथ ब्याह करने के लिए यहाँ निर्धारित कुछ नियमों का पालन करना था जो अत्यधिक कठिन था। जब जवान लड़की अपने मन-पसंद युवक के साथ भाग जाती है तब पहली बार उसे पकड़कर खूब मारा जाता है। मौका पाकर जब लड़की दुबारा भाग जाती है तब उसे आग से दाग दिया जाता है। तीसरी बार अगर मौका पाकर वह भाग जाती है तब उसे पकड़कर उसका एक पैर चुक्के के बीच में डालकर चक्का तेजी से घुमा देते हैं। ऐसा करने से उसका पैर सूज जाता है और दर्द के कारण वह बेहोश हो जाती है। कई लड़कियाँ इस दौरान क्षमा माँग लेती हैं लेकिन जिसमें हिम्मत होती है वे इस कष्ट को भी सह लेती हैं और मौका पाकर फिर भाग जाती हैं। इस प्रकार फिर भाग जाने पर गाँववाले उसके बचपन की मंगनी तोड़कर उसे उसके प्रेमी के पास पहुँचा देते हैं।

कभी-कभी भगौरिया हाट, नारायणपुर की मंडई या किसी अन्य त्यौहार के समय मौका हाथ लगने पर युगल-जोड़ी भाग जाती है। गाँववाले बाद में विधिपूर्वक इनका विवाह करवा देते हैं। इस प्रकार प्रेम विवाह को यहाँ पर सामाजिक स्वीकृति दी जाती है।

कुछ जातियों में घर-जमाई रखने का भी रिवाज़ है। विवाह से पूर्व लड़के को लड़की के घर में एक साल से ऊपर रहना पड़ता है। लड़का घर के सारे कामों में हाथ बंटाता है एवं परिवार के सदस्यों को कमाकर खिलाता है। उसके रंग-ढंग देखकर बाद में लड़की को सौंपते हैं। 'कानीबाट' कहानी में दुलेसा का विवाह इस प्रकार होता है।

'जंगली हिरनी' कहानी में एक अन्य प्रकार के विवाह का वर्णन है। मंडप को आम की डालों से सजाते हैं और हल्दी से मंडप में अजीब-अजीब सूरतें बनाई जाती हैं। घडों में लादा रखा जाता है। एक तरफ स्त्रियाँ और दूसरी तरफ पुरुष लोग बैठते हैं। दुल्हिन को हल्दी रंग की साडी पहनाई जाती है। हाथों में मेहंदी, बालों को रंगीन फुनने से लपेटे जूडा बायीं तरफ खोंसकर उसमें कंघी और माथे पर बांस का मुकुट लगाते हैं। उसके हाथ में हल्दी-पानी से भरा एक लोटा दे दिया जाता है। वह आगे बढ़कर, सामने खड़े दूल्हे पर हल्दी-पानी डालती है, फिर पीछे हट जाती है। गाँववाले हों-हों करके मुँह से आवाज़ निकालते हैं। फिर शराब और खाने का दौर चलता है जिसमें सुअर का मांस और भात खिलाते हैं। खा-पीकर युवक-युवतियाँ टोली में बंटकर मस्ती में नाचते-गाते हैं।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

'सूकी बयड़ी' कहानी में थोरा और होरा का 'सावंगया ब्याह' होता है। 'सावंगया ब्याह' उसे कहते हैं जो बड़े-बुजुर्गों द्वारा निश्चित किया जाता है और मंगनी, शगुन, बारात, फेरे, विदाई आदि सभी रस्मों को पूर्ण किया जाता है। जब लड़केवाले लड़की देखने आते हैं तब घर के सामने दो बल्लियाँ गाड़ दिया जाता है जिस पर एक सुअर को उल्टा लटका देते हैं। जब बात तय हो जाती है, तब शाम को उस सुअर को काटकर पकाते हैं और शराब के साथ खाकर आनन्द मनाते हैं।

मंगनी का रस्म दुल्हन के घर अदा की जाती है। दुल्हिन के परिवारवाले अतिथियों का सत्कार पहले पानी और गुड से करते हैं। अतिथि ज़मीन पर बिछी चटाई पर बैठते हैं। उन्हें नाश्ता कराया जाता है। गाँव के बिरादरी के लोगों को भी बुलाया जाता है। बातें तय होने के पश्चात् लड़की के बाप समधी को खाट पर बिठाते हैं। दोनों समधी खाट पर बैठते हैं। तुरन्त लड़की के पिता को हुक्का पीने के लिए दिया जाता है। हुक्का गुडगुडाकर वह लड़की के पिता को देता है। लड़की के पिता हुक्के को माथे से छूकर समधी के अभिवादन को स्वीकार करते हैं और एक कश खींचकर हुक्का वापस करते हैं। इस प्रकार मंगनी की रस्म पूर्ण होती है।

शगुन के रस्म को अदा करने के दिन दूल्हे के घर से सावंग से भरी बैलगाडी विवाह के दिन आती है, जिसमें लड़की के घर के लिए अनाज, गुड और रुपया लाते हैं। साथ ही लड़की के लिए गहने और कपडे होते हैं। दुल्हिन के घरवाले सावंग के साथ आए लोगों का स्वागत करते हैं। गले लगाकर और पैर छूकर उनका सम्मान करते हैं। आए हुए सभी लोगों को तिलक लगाया जाता है। सावंग के शगुन में लाए गए गुड को एकत्र सभी लोगों में बाँटा जाता है। उससे घर में पकवान बनते हैं। अनाज को औरतें माथे से छुआकर गढ़ी के देवता को चढ़ाती हैं। बधाई के गीत गाए जाते हैं।

शगुन के बाद दूसरे दिन ढोल-नगाड़े बजाती हुई बारात आती है। एक आदमी पानी भरा पीतल का कलश लेकर आगे चलता है। कलश के ऊपर थाली में दीया रखा जाता है। गाँववाले थाली में शगुन का रुपया डालते हैं। दोनों ओर के समधी गले मिलाकर बधाई देते हैं।

जब बारात मंडप में आती है तब उन्हें सल्फी पिलाई जाती है, फिर तिलक करके भोजन कराया जाता है। पूरी रात गीत और नृत्यु होते हैं। फेरे के बाद दुल्हिन को पिता बैलगाडी में उठाकर बिठाते हैं और विदाई होती है। ससुराल में दुल्हिन के सिर पर से काली मुरगी उतारी जाती है।

यहाँ पर विधवा को चूड़ी पहनाकर पत्नी बना लेते हैं। यहाँ के नियम तथाकथित सुसंस्कृत समाज की भाँति कठोर नहीं है। यहाँ पर विवाह के कई अनेक रस्म भी प्रचलित हैं जिसका विवरण यहाँ नहीं दिया गया है।

छठी की रस्म : 'कानीबाट' कहानी में बच्चे के जन्म के छठे दिन जोनी(माँ) बच्चे को गोद में लिए औरतों के बीच बैठती है। उसके सामने जला हुआ दीपक और एक थाली में चावल रखते हैं। बच्चे की लंबी आयु के लिए औरतें मुट्ठी भर चावल लेकर उस पर गिरा देती हैं और पैसे से टीका करती हैं। जोनी सामने रखे दीपक को एक हाथ से अपने चारों ओर घुमा कर सामने

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

रखती है, फिर हथेली फैलाकर आँख से लगा लेती है। सभी औरतें इसी प्रकार आँख सेंकती हैं। इनमें एक बुजुर्ग औरत सयाडी पत्ते का छोटा-सा कावड बनाती है और बच्चे की मुट्ठी में पकडा देती है तथा घर के पूर्वजों का नाम लेती है। एक नाम पर बच्चा जब अपने हाथ को कंधे तक ले जाता है तब यह मानते हैं कि यह वही पूर्वज है। बच्चे को झूले में डालते हैं और उसके कमर में बिरजी माला पहनाते हैं। फिर सभी पुरुष और स्त्रियाँ शराब पीकर खुशी मनाते हैं। जाते वक्त सभी माँ-बाप को लड़की के पैदा होने पर बधाई देते हैं। यहाँ पर लड़की पैदा होना रईसी का सूचक माना जाता है क्योंकि इन लोगों का विश्वास है कि लड़की घर में धन लाती है। इस प्रकार बच्चों के छठी के दिन की सारी रस्में औरतें ही अदा करती हैं। नाच, गाना और शराब का दौर खूब चलता है।

आदिवासी शोषण : आदिवासियों का भोलापन और अज्ञानता का नाजायज़ फायदा बाहरी दुनिया उठा रही है। प्रगति, विकास और राष्ट्रीय हित के नाम पर राजनीतिज्ञ और सरकार उनका शोषण कर रहे हैं। बाहरी दुनिया उन्हें दमन के द्वारा अपना गुलाम बनाए रखना चाहती है। इनकी निष्कलंकता, गरीबी, अंधविश्वास और बाहरी दुनिया की ओर इनके आकर्षण के कारण ये शोषित होते जा रहे हैं। नगर-निवासियों की नकल करने की होड़ में वे अपने प्राकृतिक-सौन्दर्य से हाथ धो बैठे हैं। लेकिन जन्म, मरण, शादी-ब्याह, बीमारी, प्राकृतिक प्रकोप आदि के बारे में उनकी अपनी व्यवस्था है जिन्हें वे छोड़ नहीं पा रहे हैं। बस्तर के वनवासी इस सांस्कृतिक विलंबन के काल से गुजर रहे हैं।

वर्षों से सबल निर्बल पर अत्याचार करते आए हैं। जो लोग अधिक चतुर हैं वह अपनी बुद्धि-शक्ति, धन और अधिकार के द्वारा दूसरों का शोषण करते हैं। शोषण के अधिकारों को बनाए रखने के लिए धर्म की दुहाई देते हैं और इस अदृश्य, अलौकिक शक्ति की इच्छा का उल्लेख करते हैं। विज्ञान, शिक्षा और प्रगतिशील विचारधाराओं से कुछ हद तक लोग जागरूक हो रहे हैं लेकिन वन-जातियों के भोले-भाले लोगों की स्थिति कष्टप्रद होती जा रही है। इनके शोषण में पूँजीपतियों के साथ-साथ सरकार का भी पूरा हाथ है। हाडतोड़ परिश्रम करने के बावजूद भी दो वक्त की रोटी जुटाना इनके लिए मुश्किल है। जिन्दगी-भर प्रकृति से इन्हें संघर्ष करना पड़ता है। परिवर्तन की दौड़ में उनकी अपनी संस्कृति और रहन-सहन को वे न पूर्ण रूप से कायम रख पा रहे हैं और न त्याग पा रहे हैं। पैसे का मोह बढ़ गया है, लेकिन अंधविश्वास और गरीबी का कोई अभाव नहीं है। यह एक अजीब-सी स्थिति है जिसका फायदा, बाहरी दुनिया उठा रही है। उनकी संपत्ति और परिश्रम पर तो शहरी लोगों ने अपना हक जमाया ही है साथ ही स्त्रियों पर भी अत्याचार कर रहे हैं। अनपढ़ आदिवासी यह सब अपना नसीब समझकर भोग रहे हैं।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

कला का शोषण : बस्तर की संस्कृति और आराध्य-देवों का परिचय अन्य लोगों तक पहुँचाने का श्रेय यहाँ के घड़वा-जाति को जाता है। 'घडवा' का शाब्दिक अर्थ है- घड़ने वाला। घड़वा समाज के लोग अपने काल्पनिक शक्ति से देवी-देवताओं की पीतल की मूर्तियाँ बनाते हैं। इस शिल्प का उत्तरोत्तर विकास हुआ है और बाहरी दुनिया ने भी इसे स्वीकार किया है। सर्वश्री मानिकराम और सुखचंद को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इसके द्वारा घड़वा कला दूर-दूर तक पहुँचती है। लेकिन अब घड़वा लोग इस कला को जीवित रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। वे इस पुरस्कार और अपने बनाए गए काँसे की मूर्तियों का मोल नहीं जानते। वे आज भी गरीबी और अभाव की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं। बाहरी लोग इसका मोल जानते हैं और वह इसकी नकल करके हजारों-लाखों का व्यापार कर रहे हैं।

"इस कला में जान फूँकनेवाला कुंठित है, अभावग्रस्त है क्योंकि वह पढ़ा-लिखा नहीं है, वह नहीं जानता कि उसकी बनाई मूर्तियों का बाहर क्या मूल्य है।"[11]

जो मूर्तियाँ जगदलपुर के बाजारों में पाँच रुपये में मिल जाती हैं, उसका मूल्य बाहर पचास-साठ से भी ज्यादा है। बाहर इन चीजों की इतनी माँग होने के बावजूद भी यहाँ लोगों को पेट-भर अनाज नहीं मिलता है, इसलिए वे आत्मविश्वास और बेफिक्री के साथ मूर्तियों को नहीं घड़ सकते। वे अब कुंठित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 'टोना' कहानी के द्वारा मेहरुन्निसा परवेज़ ने बस्तर के घड़वा-जाति की यथार्थ-स्थिति को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

धर्म के नाम पर शोषण : आदिवासियों का सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक जीवन धर्म द्वारा परिचालित होता है। उनके सपूर्ण जीवन का केन्द्र-बिन्दु धर्म है। लेकिन अन्य धर्मों के लोगों के हस्तक्षेप के कारण उनके सरल और निष्कलुष जीवन नष्ट हो गया है। धर्म के नाम पर बस्तर के आदिवासियों के शोषण को मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपनी आंचलिक कहानियों में उजागर किया है।

यहाँ के आदिवासियों के अनुशासनबद्ध संगठित जिन्दगी में बाबा बिहारीदास ने हलचल पैदा कर दी है। बिहारीदास ने इनके भोलेपन और अंधविश्वास का खूब फायदा उठाया है। उसने अपने आपको मरे हुए राजा प्रवीरचंद भंजदेव का अवतार बताया है। इसलिए राजा को प्यार करने वाले ये अंधविश्वासी, बिहारीदास के पीछे पागल हैं। पूरे बस्तर में इनके अनुयायी फैले पड़े हैं। दंतेश्वरी के भक्त अब राम-सीता की पूजा करते हैं। यज्ञ, कंठी, गंगाजल, जनेऊ, झंडा, त्रिशूल, पीले-परिधान आदि को यहाँ स्वीकृति मिल गई है। कंठी बांधकर इन लोगों ने शराब और मांस छोड़ दिया था लेकिन अपनी प्यारी चीज़ से वे ज्यादा दिन दूर नहीं रह पाए। कंठी तोड़कर, वे फिर से इसका सेवन करने लगे।

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

दक्षिण में उन्होंने पूरी संपत्ति 'कंठिवाले बाबा' के चरणों में अर्पित कर दिया। इनके दिए हुए रुपये से ही वहाँ मंदिर, सराय, मठ आदि बने। इनके भोलेपन का फायदा बाबा बिहारीदास ने खूब उठाया है।

"ये लोग शराब, मांस छोड़कर अपने घरों के जानवर सस्ते दामों में बेच आए। जब होश आया तो ये और गरीब हो चुके थे। इनकी अज्ञानता का दूसरों ने हमेशा फायदा उठाया।"[12]

सारी संपत्ति लुट जाने के बावजूद वे अपने आपको धन्य समझ रहे हैं। अपने राजा के लिए सब कुछ अर्पित कर देने की आत्मतृप्ति से वे फूले नहीं समा रहे हैं। लेकिन इन बेचारों को क्या पता कि उन्हें धोखा दिया गया है। उनके इस भ्रम और अज्ञान ने उन्हें और भी गरीब एवं दयनीय बना दिया है।

नारी शोषण : शहरी बाबू जब बस्तर की लड़कियों के सुन्दर, सरल और मासूम सौन्दर्य को देखते हैं तो उनकी नजरें फिसल जाती हैं। इस वन्य-सौन्दर्य को अपनी मुट्ठी में करने के लिए ये चतुर-निवासी मचल उठते हैं। परिणाम स्वरूप ये उन्मुक्त-रागिनियाँ झूठे प्रेम के मायाजाल में फंस जाती हैं और जिन्दगी भर के लिए मायूसी और अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती हैं।

'जंगली हिरनी' कहानी में मेगन को शहरी-बाबू बहला-फुसला कर अपनी हवस का शिकार बनाता है, फिर उसे हमेशा के लिए छोड़ देता है। उसकी बेटी, लच्छो बिल्कुल साहब की तरह गोरी थी। इससे मेगन के पति, बुधु को शक हो जाता है और दोनों में हर दिन झगडा होने लगता है। लच्छो भी मेगन जैसा नसीब लेकर पैदा होती है। वह एक परदेशी अध्यापक के प्रेम-जाल में फँस जाती है और उसके हाथों अपना सर्वस्व लुटा देती है। कुछ महीनों बाद परदेशी वापस शहर चला जाता है और लच्छो को सिर्फ टूटे सपने और बिखरे आँसू दे जाता है।

शोषकों की सफलता जंगल के इन निवासियों की मासूमियत की वजह से है। अगर ये तरक्की और नगरीकरण के मोह-जाल से दूर रहे तो शायद ये ज्यादा खुश रह सकते हैं। जिस दिन इन्हें शोषक-वर्ग के कुतंत्र और अपने बल का एहसास होगा उस दिन इन जंगलों में क्रान्ति की शुरूआत देखी जा सकती है।

आदिवासियों पर शहरी प्रभाव : शहरी चकाचौंध को देखकर आदिवासी उस ओर आकर्षित हो रहे हैं। बस्तर के छोटे-छोटे गाँव जब अपने में ही सीमित थे, तब यहाँ के लोग ज्यादा सुखी थे। थोडे से सुखों से खुश होने वालों को जब अपने अभावों का ज्ञान हुआ तब वे कुंठित हो उठे हैं। वे भी तरक्की करना चाहते हैं, जिन्दगी में आगे बढ़ना चाहते हैं और इस कारण उनकी जिन्दगी में भी बेईमानी, बनावटीपन और खुदगर्जी जैसे दीमक लग गए हैं। पहले यहाँ पर हर चीज़

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

कौडियों के दाम बिकती थी। लेकिन जब से आदिवासी प्रदेश के उद्धार के लिए सरकार ने नए प्रोजेक्ट शुरू किया है तब से यहाँ फैशन और महंगाई ने अपना पंजा फैला दिया है। यहाँ के लोग अब पैसे का मोल जान चुके हैं। पहले जहाँ बाजारों में सामानों का एक्स्चेंज होता था वही अब लोग होशियारी और समझदारी से हर सामान पैसा देकर खरीदते हैं। वे जान चुके हैं कि उनकी कला, गीत-संगीत, नृत्यु आदि का बाहरी दुनिया में काफी माँग है। अपनी अहमीयत को समझ जाने के बाद उनके पहले वाला भोलापन कलंकित हो रहा है।

फैशन की ओर ज्यादा झुकाव यहाँ की युवतियों में देखा जा रहा है। पहले जगदलपुर में मोटे-मोटे हाथ, करघे की बनी आदिवासी सफेद, कत्थई, लाल साडियों का अंबार लगा रहता था वही अब सिर्फ टेरिलीन और नायलोन की साड़ियाँ उपलब्ध हैं। दो हाथ की, जाँघों तक लंबी धोती और जंगली फूलों से श्रृंगार करने वाली लड़कियाँ अब नायलोन और टेरिलीन की साड़ियाँ पहनती हैं। अफगान स्नो और रेमी पाउडर से पोते हुए गाल, बालों में ढेर सारी रंग-बिरंगे क्लिपों से अपना श्रृंगार करके ये लड़कियाँ जब निकलती हैं तब हास्यप्रद लगने लगती हैं। तरक्की के सिलसिले को आगे बढ़ाने से पहले अगर इन आदिवासियों को थोड़ा वक्त नहीं दिया गया तो शायद यह शहरीकरण और बाजारीकरण उनकी संस्कृति और सभ्यता को पूर्ण रूप से नष्ट कर देगी।

निष्कर्ष : मेहरुन्निसा परवेज़ के आंचलिक कहानी साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हमारे सामने बस्तर के आदिवासी जीवन का एक चित्र उभरकर आता है। हमारा परिचय यहाँ के निष्कलंक आदिवासियों से एवं उनकी सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, रीति-रिवाज़ आदि से हुआ है। शहरीकरण और बाजारीकरण के कारण शोषकों के हाथों मानसिक और शारीरिक शोषण से ग्रस्त इन आदिम-जातियों की आज की स्थिति का भी संकेत हमें मिलता है। बाँसों की झुरमुट से घिरा हुआ बस्तर, मध्यप्रदेश के दक्षिण में स्थित जिला है जहाँ के पचहत्तर प्रतिशत निवासी आदिवासी हैं। यहाँ की प्रकृति सौन्दर्य में निखार लाती हुई इंद्रावती, खोलाब और कोतरी नदियाँ यहाँ की भूमि को सिंचित करती हैं। बस्तर के जंगलों में बहती नदी और झरने की गडगडाहट, वन्य-कुसुमों की खुशबू और चिड़ियों की चहचहाहट मन को मोह लेनेवाली हैं। इनके मध्य में बसा हुआ गाँव और कस्बों में एक सरलतम और तनावहीन समाज कायम है। इन भोले-भाले प्रकृति की संतान को जंगल से ही खान-पान और औषधी की सामग्रियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। आदिम-जाति के ये स्वतंत्रप्रिय लोग वन में ही रहना पसन्द करते हैं। पेज और शराब इनका मुख्य भोजन है। अन्य अरण्यकों की तरह ये लोग भी वस्त्रों का उपयोग कम करते हैं। इन्हें साज-श्रृंगार का बहुत शौक है। स्त्री-पुरुष सभी विभिन्न प्रकार की मालाएँ, कडे,

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

अँगूठियाँ आदि से अपना श्रृंगार करते हैं। यहाँ की लड़कियों का सबसे मुख्य श्रृंगार शरीर पर गोदना-गुदवाना है। विवाह पूर्व शरीर पर विभिन्न प्रकार की आकृतियों को गुदवाना आवश्यक है। इनका विश्वास है कि इससे भूत-प्रेत और बुरी आत्मा दूर रहती है।

बस्तर-निवासियों का विश्वास है कि यहाँ के कण-कण में देवी-देवताओं का वास है। मुख्यत: यहाँ पर माँ दंतेश्वरी का ही साम्राज्य है। इनके जीवन में जादू-टोने का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिन्दा रहने के लिए प्रकृति से संघर्ष करते आदिवासियों के लिए तीज-त्यौहार चेतना और स्फूर्ति पैदा कर देती है। हर त्यौहार के अंत में मेला लगता है जो सिर्फ खरीदारी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन का ही स्थल न होकर बिछड़े दिलों का मिलन स्थल भी है। लेकिन अब इन मेलों में यहाँ की सुन्दर युवतियों के सौन्दर्य का सौदा शहरी-बाबू अपने पैसे और चतुराई के बल पर करते हैं, जिससे यहाँ के पवित्र वातावरण कलंकित हो रहा है।

बस्तर की सभ्यता और संस्कृति बनाए रखने का एवं युवा-पीढ़ी में अनुशासन युक्त जिन्दगी के प्रशिक्षण देने के उत्तरदायित्व को संभालने वाली संस्था को घोटुल कहते हैं, जो उन्हें जीने की कला सिखाती है। बाहरी लोगों के हस्तक्षेप के कारण अब लड़कियाँ रात को वापस घर लौट जाती हैं। यहाँ पर वैवाहिक-पद्धति कई प्रकार की है। जब माता-पिता लड़की को पसन्द करते हैं तो सामाजिक नियमोंके अनुसार मंगनी, शगुन, बारात, फेरे, विदाई आदि सारी रस्मों का अनुसरण करना पड़ता है। प्रेमी-प्रेमिका किसी हाट या मंडई से भाग जाते हैं, फिर गाँव-वाले उनका विधिपूर्वक विवाह कराकर उन्हें सामाजिक स्वीकृति देते हैं। विधवा को चूडी पहनाकर पत्नी बनाया जा सकता है। यहाँ पर बाल विवाह-प्रथा का प्रचलन न के बराबर है। बच्चों के छठी के दिन की सारी रस्में औरतें ही अदा करती हैं। नाच, गाना और शराब का दौर खूब चलता है। यहाँ लड़कियों का पैदा होना रईसी का सूचक माना जाता है।

आदिवासियों का भोलापन और अज्ञानता का नाजायज़ फायदा बाहरी दुनिया उठा रही है। प्रगति, विकास और राष्ट्रीय हित के नाम पर राजनीतिज्ञ और सरकार उनका शोषण कर रहे हैं। बाहरी दुनिया उन्हें दमन के द्वारा अपना गुलाम बनाए रखना चाहती है। इनकी निष्कलंकता, गरीबी, अंधविश्वास और बाहरी दुनिया की ओर इनके आकर्षण के कारण ये शोषित होते जा रहे हैं। नगर-निवासियों की नकल करने की होड़ में वे अपने प्राकृतिक-सौन्दर्य से हाथ धो बैठे हैं। महंगाई और फैशन की उपस्थिति अब साफ दिखाई देती है। पैसे के महत्त्व को ये लोग पहचान चुके हैं। इनमें जो ईमानदारी, भोलापन और कठिन जीवन-परंपरा थी, वह गुम होती जा रही है। कुटिलता, लोभ, बेईमानी, खुदगर्जी, बनावटीपन जैसे दीमक इनके समाज में भी उभरकर आ रही हैं। वे भौतिक सुख-सुविधाओं को अपनाना चाहते हैं। लेकिन

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

जन्म, मरण, शादी-ब्याह, बीमारी, प्राकृतिक प्रकोप आदि के बारे में उनकी अपनी व्यवस्था है जिन्हें वे छोड़ नहीं पा रहे हैं। बस्तर के वनवासी इस सांस्कृतिक विलंबन के काल से गुजर रहे हैं। सभ्य समाज के लोग उन्नती के नाम पर आदिवासियों को विरासत में मिले संस्कार से शायद बेदखल कर रहे हैं और उन्होंने इनकी शान्त जिन्दगी में हलचल पैदा कर दी है। इस आधुनिक युग में जहाँ विज्ञान और तकनीक ने धूम मचा रखा है और जहाँ हर कहीं स्पर्धा का वातावरण छाया है वहाँ बस्तर जैसे पिछड़े क्षेत्र की तरक्की के बारे में सोचना जरूरी है। लेकिन अगर इन लोगों को कुंठा, अभाव-बोध, अकेलापन जैसे आज के महानगरीय रोगों से दूर रखा जाय तो ज्यादा बेहतर है। अगर ये लोग आने वाली नई पीढ़ी को साफ-सुथरे विचार और संस्कृति देने में कामयाब हो रहे हैं तो ये तथाकथित सभ्य-समाज से पीछे कैसे हो सकते हैं?

संदर्भ सूची

1. Tribal Life and Forests - Devendra Thakar and D.N. Thakur, P.4

2. हल्बी और उसका साहित्य - लाल जगदलपुरी, पृ.200

3. आर्थिक सामाजिक-नौतिक घुटन:कस्बों के आइने में जगदलपुर - मेहरुन्निसा परवेज़, पृ.17

4. सरई और सागौन की छांव तले - बहादुरलाल तिवारी, पृ.134

5. Tribalism in India - Kamaladevi Chattopadhyay, P.49

6. सूकी बयड़ी - (समर-मेहरुन्निसा परवेज़), पृ.130

7. वही, पृ.131

8. टोना - (सत्रह आंचलिक कहानियाँ-मेहरुन्निसा परवेज़), पृ.80

9. वही, पृ.81

10. चुंबकीय आकर्षक के केन्द्र : घोटुल - अशोक तिवारी, पृ.114

11. टोना - (सत्रह आंचलिक कहानियाँ-मेहरुन्निसा परवेज़), पृ.88

12. वही, पृ.89

ISSN 2454-2695
Vol 7 Issue 12
December 2021

संपर्क : डॉ. एम. नारायण रेड्डी, जे.आर.पी.-हिन्दी, एन.टी.एस.-आई, भारतीय भाषा संस्थान, मानसगंगोत्री-पोस्ट, मैसूरु-570 006, कर्नाटक-राज्य, मोबाइल नं. 9480405650

Contact : Dr. M. Narayana Reddy, JRP-Hindi, NTS-I, Central Institute of Indian Languages, Manasagangothri-Post, Mysuru-570 006, Karnataka- State. Mobile No. 9480405650.